

## Chapter सात

### शिवजी द्वारा विषपान से ब्रह्माण्ड की रक्षा

सातवें अध्याय का सारांश इस प्रकार है। भगवान् ने कच्छप का अवतार लेकर समुद्र में गहरी डुबकी लगाई जिससे वे मन्दर पर्वत को अपनी पीठ पर धारण कर सकें। समुद्र मन्थन से सर्वप्रथम कालकूट विष प्राप्त हुआ। सभी इस विष से भयभीत हो उठे, किन्तु शिवजी ने इसे पीकर सबको संतुष्ट किया।

जब यह समझौता हो गया कि मन्थन से जो अमृत निकलेगा उसे देवता तथा दैत्य परस्पर समान रूप से बाँट लेंगे तो उन्होंने वासुकि को लाकर उसे मथानी की रस्सी के रूप में प्रयुक्त किया। भगवान् की दक्ष योजना के अनुसार असुरों ने सर्प का मुख-भाग पकड़ा और देवताओं ने पूँछ का भाग। तब उन्होंने बड़े ही यत्न से सर्प को दोनों दिशाओं में खींचना शुरू कर दिया। चूँकि मन्दर पर्वत के रूप में प्रयुक्त मथानी अत्यन्त भारी थी और जल के भीतर किसी आधार पर टिकी हुई नहीं थी अतएव वह जल में डूब गई और इस तरह देवताओं तथा असुरों का पराक्रम व्यर्थ हो गया। तब कच्छप रूप धारण करके भगवान् प्रकट हुए और उन्होंने मन्दर पर्वत को अपनी पीठ पर टिका लिया। फिर तो मन्थन बड़ी तेजी से चालू हो गया। मन्थन के परिणामस्वरूप प्रचुर मात्रा में विष उत्पन्न हुआ। जब प्रजापतियों ने देखा कि उन्हें बचाने वाला कोई नहीं है, तो उन्होंने शिवजी के पास जाकर उनकी सच्ची स्तुतियाँ कीं। शिवजी आशुतोष कहलाते हैं क्योंकि वे भक्त पर अत्यधिक प्रसन्न हो जाते हैं; अतएव उन्होंने मन्थन से उत्पन्न सारे विष को पी जाना तुरन्त स्वीकार कर लिया। जब शिवजी ने विष पीना स्वीकार कर लिया तो देवी दुर्गा अर्थात् शिवजी की पत्नी भवानी तनिक भी विचलित नहीं हुई क्योंकि उन्हें शिवजी के शौर्य का पता था। निस्सन्देह, उन्होंने इस समझौते पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की। तब शिवजी ने सर्वत्र व्याप्त विनाशकारी विष को अपनी हथेली पर एकत्र किया और वे उसे पी गये। इस विष के पी जाने

से उनकी गर्दन नीली-नीली सी हो गई। विष का थोड़ा अंश उनकी हथेली से भूमि पर गिर पड़ा। इसी विष के कारण विषैले साँप, बिच्छू, विषैले पौधे तथा अन्य सारी विषैली वस्तुएँ संसार में पाई जाती हैं।

श्रीशुक उवाच

ते नागराजमामन्त्र्य फलभागेन वासुकिम् ।  
परिवीय गिरौ तस्मिन्नेत्रमब्धि मुदान्विताः ।  
आरेभिरे सुरा यत्ता अमृतार्थे कुरुद्वह ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; ते—वे सब ( देव तथा दैत्य ); नाग-राजम्—नागों के राजा को; आमन्त्र्य—बुलाकर या प्रार्थना करके; फल-भागेन—अमृत का हिस्सा दिलाने का वचन देकर; वासुकिम्—वासुकि सर्प को; परिवीय—घेरकर; गिरौ—मन्दर पर्वत पर; तस्मिन्—उसको; नेत्रम्—मथने की रस्सी; अब्धिम्—क्षीरसागर को; मुदा अन्विताः—सभी अत्यन्त प्रसन्न थे; आरेभिरे—कर्म करने लगा; सुराः—देवतागण; यत्ताः—अत्यन्त प्रयास से; अमृत-अर्थे—अमृत प्राप्त करने के लिए; कुरु-उद्वह—कुरुओं में श्रेष्ठ, हे राजा परीक्षित।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे कुरुश्रेष्ठ महाराज परीक्षित! देवों तथा असुरों ने सर्पराज वासुकि को बुलवाया और उसे वचन दिया कि वे उसे अमृत में भाग देंगे। उन्होंने वासुकि को मन्दर पर्वत के चारों ओर मथने की रस्सी की भाँति लपेट दिया और क्षीरसागर के मन्थन द्वारा अमृत उत्पन्न करने का बड़ी प्रसन्नतापूर्वक प्रयत्न किया।

हरिः पुरस्ताज्जगृहे पूर्व देवास्ततोऽभवन् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

हरिः—भगवान् अजित ने; पुरस्तात्—सामने से; जगृहे—ले लिया; पूर्वम्—सर्वप्रथम; देवाः—देवतागण; ततः—तत्पश्चात्; अभवन्—वासुकि का अगला हिस्सा पकड़ लिया।

भगवान् अजित ने सर्प के अगले हिस्से को पकड़ लिया और तब सारे देवताओं ने उनके पीछे होकर उसे पकड़ लिया।

तन्नैच्छन्दैत्यपतयो महापुरुषचेष्टितम् ।  
न गृह्णीमो वयं पुच्छमहेरङ्गममङ्गलम् ।  
स्वाध्यायश्रुतसम्पन्नाः प्रख्याता जन्मकर्मभिः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह व्यवस्था; न ऐच्छन्—न चाहते हुए; दैत्य-पतयः—दैत्यों के नेता; महा-पुरुष—भगवान् का; चेष्टितम्—प्रयास; न—नहीं; गृह्णीमः—ले लेंगे; वयम्—हम सभी ( दैत्यगण ); पुच्छम्—पूँछ; अहेः—सर्प की; अङ्गम्—शरीर का भाग; अमङ्गलम्—अशुभ, निकृष्ट; स्वाध्याय—वैदिक अध्ययन से; श्रुत—तथा वैदिक ज्ञान से; सम्पन्नाः—पूर्ण तथा सज्जित; प्रख्याताः—प्रमुख; जन्म-कर्मभिः—जन्म तथा कार्यकलापों से।

दैत्यों के नेताओं ने पूँछ पकड़ना मूर्खतापूर्ण समझा क्योंकि यह सर्प का अशुभ अंग है। इस

के स्थान पर वे अगला हिस्सा पकड़ना चाहते थे जिसे भगवान् तथा देवताओं ने पकड़ रखा था क्योंकि वह भाग शुभ तथा महिमा-युक्त था। इस प्रकार असुरों ने इस दलील के साथ कि वे सभी वैदिक ज्ञान में अत्यधिक बढ़े-चढ़े हैं और अपने जन्म तथा कार्यकलापों के लिए विख्यात हैं, आपत्ति उठाई कि वे सर्प के अगले हिस्से को पकड़ना चाहते हैं।

**तात्पर्य :** दैत्यों ने सोचा था कि सर्प का अगला भाग शुभ होता है और इस भाग को पकड़ना अधिक वीरतापूर्ण होगा। साथ ही दैत्य सदा ही देवताओं से विपरीत कार्य करते हैं। यही उनकी प्रकृति है। हमने कृष्णभावनामृत आन्दोलन में इसे वास्तव में देखा है। हम लोग गोरक्षा का प्रचार करते हैं और लोगों को अधिक दूध पीने तथा दूध की बनी सुस्वादु वस्तुएँ खाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं लेकिन दैत्यगण ऐसे प्रस्तावों का विरोध करने मात्र के लिए यह दावा करते हैं कि वे विज्ञान में अग्रसर हैं, जैसाकि *स्वाध्याय श्रुत सम्पन्नाः* शब्दों से यहाँ वर्णन हुआ है। उनका कहना है कि उनकी वैज्ञानिक विधि से यह पता चला है कि दूध खतरनाक होता है और गौवों की हत्या करके प्राप्त किया हुआ गोमांस अधिक पौष्टिक होता है। यह मतभेद सदैव चलता रहेगा। निस्सन्देह, यह आदिकाल से चला आ रहा है। लाखों वर्ष पूर्व भी ऐसी ही होड़ थी। दैत्यों ने अपने तथा कथित वैदिक अध्ययन के फलस्वरूप, साँप के मुख भाग को पकड़ना श्रेयस्कर समझा। भगवान् ने साँप के खतरनाक भाग को पकड़ना और दैत्यों को पूँछ पकड़ने देना बुद्धिमानी समझा, क्योंकि वह खतरनाक नहीं थी लेकिन स्पर्धा की भावना के कारण दैत्यों ने साँप के मुख के निकट वाले भाग को पकड़ना बुद्धिमानी समझा। यदि देवता विषपान करते तो दैत्य यह संकल्प करते “हम भी विष में हिस्सा बँटा कर और इसे पीकर शान से क्यों न मरें?”

*स्वाध्यायश्रुतसम्पन्नाः प्रख्याता जन्मकर्माभिः* शब्दों से एक दूसरा प्रश्न उठ सकता है। यदि कोई सचमुच वैदिक ज्ञान को प्राप्त है और संस्तुत कार्यों को करने के लिए विख्यात है तथा उच्चकुल में जन्म लिए हुए है, तो फिर वह दैत्य क्यों कहलाये? इसका उत्तर यही है कि भले ही कोई कितनी उच्च शिक्षा प्राप्त क्यों न हो तथा उच्चकुल में क्यों न जन्मा हो, किन्तु यदि वह ईश्वरविहीन है, और ईश्वर के उपदेशों को नहीं सुनता तो वह दैत्य (असुर) है। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं—यथा हिरण्यकशिपु, रावण तथा कंस जैसे सुशिक्षित व्यक्ति जो राज परिवार में जन्मे थे और युद्ध में अत्यन्त

शक्तिशाली तथा पराक्रमी थे, किन्तु भगवान् का उपहास करने के कारण राक्षस या दैत्य कहलाते थे। कोई कितना ही सुशिक्षित क्यों न हो, किन्तु यदि उसे कृष्णभावनामृत का बोध न हो, भगवान् के प्रति आज्ञाकारिता न हो तो वह असुर है। इसका वर्णन स्वयं भगवान् ने *भगवद्गीता* (७.१५) में किया है—

*न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।*

*माययापहतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥*

“जो दुष्कृती निपट मूर्ख तथा मनुष्यों में अधम हैं और जिनका ज्ञान मोह द्वारा हर लिया गया है तथा जो नास्तिक प्रकृति के असुरों का साथ देते हैं, वे मेरी शरण में नहीं आते।” *आसुरं भावम्* ईश्वर के अस्तित्व को या उनके दिव्य उपदेशों को न स्वीकार करने का सूचक है। *भगवद्गीता* साक्षात् भगवान् द्वारा दिये गये दिव्य उपदेशों से युक्त है। किन्तु असुरगण इन उपदेशों को प्रत्यक्ष स्वीकार न करने की बजाये मनमाने ढंग से टीकाएँ करते हैं और लोगों को भ्रमित करते हैं। इससे स्वयं उन्हें भी कोई लाभ नहीं मिलता। अतएव मनुष्य को चाहिए कि आसुरी ईश्वरविहीन पुरुषों से सचेत रहे। भगवान् कृष्ण के वचनों के अनुसार यदि कोई ईश्वरविहीन असुर सुशिक्षित भी हो तो भी उसे *मूढ*, *नराधम* तथा *माययापहतज्ञान* समझना चाहिए।

इति तूष्णीं स्थितान्दैत्यान्विलोक्य पुरुषोत्तमः ।

स्मयमानो विसृज्याग्रं पुच्छं जग्राह सामरः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; तूष्णीम्—चुपचाप; स्थितान्—ठहरा; दैत्यान्—दैत्यों को; विलोक्य—देखकर; पुरुष-उत्तमः—भगवान् ने; स्मयमानः—मुस्काते हुए; विसृज्य—त्याग कर; अग्रम्—साँप के अगले भाग को; पुच्छम्—पिछला भाग; जग्राह—पकड़ लिया; स-अमरः—देवताओं के साथ-साथ।

इस प्रकार असुरगण देवताओं की इच्छा का विरोध करते हुए मौन रहे। भगवान् असुरों के मनोभावों को ताड़ गये अतएव वे मुस्काने लगे। उन्होंने विचार-विमर्श किये बिना तुरन्त ही साँप की पूँछ पकड़ कर उनका प्रस्ताव मान लिया और सारे देवता उनके साथ हो लिये।

कृतस्थानविभागास्त एवं कश्यपनन्दनाः ।

ममन्थुः परमं यत्ता अमृतार्थं पयोनिधिम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

कृत—ठीक करने; स्थान-विभागा:—जहाँ-जहाँ उन्हें पकड़ना था उन स्थानों का विभाजन; ते—वे; एवम्—इस प्रकार;  
कश्यप-नन्दना:—कश्यप के पुत्र ( देवता तथा असुर दोनों ही ); ममन्थु:—मथा; परमम्—अत्यधिक; यत्ता:—यत्न से; अमृत-  
अर्थम्—अमृत प्राप्ति के लिए; पय:—निधिम्—क्षीरसागर को।

साँप को किस स्थान पर पकड़ना है, यह तय करने के पश्चात् कश्यप के पुत्र देवता तथा असुर दोनों ने क्षीरसागर के मन्थन से अमृत पाने की लालसा से अपना-अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया।

मथ्यमानेऽर्णवे सोऽद्रिरनाधारो ह्यपोऽविशत् ।  
ध्रियमाणोऽपि बलिभिर्गौरवात्पाण्डुनन्दन ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

मथ्यमाने—मन्थन के बीच में; अर्णवे—क्षीरसागर में; सः—वह; अद्रिः—पहाड़; अनाधारः—बिना किसी आधार के; हि—निस्सन्देह; अपः—जल में; अविशत्—डूब गया; ध्रियमाणः—पकड़ा हुआ; अपि—यद्यपि; बलिभिः—अत्यन्त बलशाली सुरों तथा असुरों द्वारा; गौरवात्—भारी होने के कारण; पाण्डु-नन्दन—हे पाण्डुपुत्र ( महाराज परीक्षित )।

हे पाण्डुवंशी! जब क्षीरसागर में मन्दर पर्वत को इस तरह मथानी के रूप में प्रयुक्त किया जा रहा था, तो उसका कोई आधार न था अतएव असुरों तथा देवताओं के बलिष्ठ हाथों द्वारा पकड़ा रहने पर भी वह जल में डूब गया।

ते सुनिर्विण्णमनसः परिम्लानमुखश्रियः ।  
आसन्स्वपौरुषे नष्टे दैवेनातिबलीयसा ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

ते—वे सब ( देवता तथा असुर ); सुनिर्विण्ण-मनसः—निराश मन से; परिम्लान—मुरझाई; मुख-श्रियः—मुखमण्डल की सुन्दरता; आसन्—हो गई; स्व-पौरुषे—अपने-अपने पौरुष के; नष्टे—नष्ट होने पर; दैवेन—दैवी विधान से; अति-बलीयसा—अत्यन्त बलवान्।

चूँकि पर्वत दैवी शक्ति से डूबा था अतएव देवता तथा असुरगण निराश थे और उनके चेहरे कुम्हला गये प्रतीत होते थे।

विलोक्य विघ्नेशविधिं तदेश्वरो  
दुरन्तवीर्योऽवितथाभिसन्धिः ।  
कृत्वा वपुः कच्छपमद्भुतं महत्  
प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

विलोक्य—देखकर; विघ्न—व्यवधान ( पर्वत का डूबना ); ईश-विधिम्—दैवी व्यवस्था से; तदा—तब; ईश्वरः—भगवान्;  
दुरन्त-वीर्यः—अकल्पनीय शक्तिमान; अवितथ—अच्युत; अभिसन्धिः—जिसका संकल्प; कृत्वा—विस्तार करके; वपुः—

शरीर; कच्छपम्—कछुवा; अद्भुतम्—विचित्र; महत्—विशाल; प्रविश्य—घुसकर; तोयम्—जल में; गिरिम्—पर्वत ( मन्दर ) को; उज्जहार—उठा लिया।

भगवदिच्छा से जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी उसे देखकर असीम शक्तिशाली एवं अच्युत संकल्प वाले भगवान् ने कछुए का अद्भुत रूप धारण किया और जल में प्रविष्ट होकर विशाल मन्दर पर्वत को उठा लिया।

तात्पर्य : यहाँ इसका प्रमाण है कि भगवान् हर वस्तु के परम नियन्ता हैं। जैसा हम पहले वर्णन कर चुके हैं, मनुष्यों की दो श्रेणियाँ होती हैं—असुर तथा देवता—किन्तु इनमें से कोई भी परम शक्तिशाली नहीं होता। हर एक व्यक्ति का यह अनुभव है कि हम पर परम शक्ति द्वारा व्यवधान डाले जाते हैं। असुरगण इन व्यवधानों को मात्र संयोग मानते हैं, किन्तु भक्तगण इन्हें परम नियन्ता के कार्य मानते हैं। अतएव जब उन्हें व्यवधानों का सामना करना पड़ता है, तो वे भगवान् से प्रार्थना करते हैं। *तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।* भक्तगण व्यवधानों को यह मानकर सह लेते हैं कि वे भगवान् द्वारा उत्पन्न हैं। वे उन्हें वरदान समझते हैं। किन्तु असुरगण परम नियन्ता को न समझ सकने के कारण ऐसे व्यवधानों को संयोग मानते हैं। यहाँ पर तो साक्षात् भगवान् उपस्थित थे। व्यवधान तो उनकी इच्छा के कारण उत्पन्न हुए थे और उनकी इच्छा से ही वे व्यवधान हट भी गये। भगवान् विशाल पर्वत को सहारा देने के लिए कच्छप रूप में प्रकट हुए। *क्षितिःरिह विपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे।* भगवान् ने उस विशाल पर्वत को अपनी पीठ पर रख लिया। *केशव धृतकूर्मशरीर जय जगदीश हरे।* संकटों की सृष्टि भगवान् द्वारा की जा सकती है और वे उन्हीं के द्वारा दूर भी किये जा सकते हैं। यह भक्तों को ज्ञात रहता है, किन्तु असुरगण इसे नहीं समझ सकते।

तमुत्थितं वीक्ष्य कुलाचलं पुनः

समुद्यता निर्मथितुं सुरासुराः ।

दधार पृष्ठेन स लक्षयोजन

प्रस्तारिणा द्वीप इवापरो महान् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस पर्वत को; उत्थितम्—उठा हुआ; वीक्ष्य—देखकर; कुलाचलम्—मन्दर नामक; पुनः—फिर; समुद्यताः—प्रोत्साहित हो गये; निर्मथितुम्—क्षीरसागर का मन्थन करने के लिए; सुर-असुराः—देवता तथा दानव; दधार—ले गये; पृष्ठेन—पीठ पर; सः—भगवान्; लक्ष-योजन—एक लाख योजन ( आठ लाख मील ); प्रस्तारिणा—फैला हुआ; द्वीपः—टापू, द्वीप; इव—सदृश; अपरः—अन्य; महान्—विशाल।

जब देवताओं तथा असुरों ने देखा कि मन्दर पर्वत उठाया गया है, तो वे प्रफुल्लित हो गए

और पुनः मन्थन करने के लिए प्रोत्साहित हुए। यह पर्वत विशाल कछुवे की पीठ पर टिका था, जो एक विशाल द्वीप की भाँति आठ लाख मील तक फैला हुआ था।

सुरासुरेन्द्रैर्भुजवीर्यवेपितं  
परिभ्रमन्तं गिरिमङ्ग पृष्ठतः ।  
बिभ्रत्तदावर्तनमादिकच्छपो  
मेनेऽङ्गकण्डूयनमप्रमेयः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

सुर-असुर-इन्द्रैः—देवताओं तथा असुरों के नायकों द्वारा; भुज-वीर्य—अपनी भुजाओं के बल पर; वेपितम्—गति करते हुए; परिभ्रमन्तम्—घूमता हुआ; गिरिम्—पर्वत को; अङ्ग—हे महाराज परीक्षित; पृष्ठतः—अपनी पीठ पर; बिभ्रत्—स्थित; तत्—उस; आवर्तनम्—घूमते हुए; आदि-कच्छपः—आदि कछुवे की तरह; मेने—विचार किया; अङ्ग-कण्डूयनम्—शरीर को खुजलाने के समान सुहावना; अप्रमेयः—असीमित।

हे राजा! जब देवताओं तथा असुरों ने अपने बाहुबल से अद्भुत कछुवे की पीठ पर स्थित मन्दर पर्वत को घुमा दिया तो कछुवे ने पर्वत के इस घूमने को अपना शरीर खुजलाने का साधन मान लिया। इससे उसे अत्यन्त सुखप्रद अनुभूति हुई।

तात्पर्य : भगवान् सदैव असीम हैं। यद्यपि कच्छप रूप में भगवान् ने अपनी पीठ पर मन्दर पर्वत नामक विशालतम पर्वत धारण कर रखा था, किन्तु उन्हें कोई असुविधा अनुभव नहीं हो रही थी। उल्टे, उन्हें थोड़ी खुजलाहट लग रही थी जिससे पर्वत का घूमना उन्हें निश्चय ही अत्यन्त रुचिकर लग रहा था।

तथासुरानाविशदासुरेण  
रूपेण तेषां बलवीर्यमीरयन् ।  
उद्दीपयन्देवगणांश्च विष्णु-  
दैवेन नागेन्द्रमबोधरूपः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

तथा—तत्पश्चात्; असुरान्—असुरों को; आविशत्—प्रविष्ट हो गये; आसुरेण—रजोगुण के द्वारा; रूपेण—ऐसे रूप में; तेषाम्—उनका; बल-वीर्यम्—बल तथा शक्ति; ईरयन्—बढ़ती हुई; उद्दीपयन्—प्रोत्साहित करते; देव-गणान्—देवताओं को; च—भी; विष्णुः—भगवान् विष्णु; दैवेन—सत्त्व रूप के द्वारा; नाग-इन्द्रम्—सर्पों के राजा वासुकि को; अबोध-रूपः—तमोगुण के द्वारा।

तत्पश्चात् भगवान् विष्णु, उन सबको प्रोत्साहित करने एवं विभिन्न प्रकार से शक्ति देने के लिए, असुरों में रजोगुण के रूप में, देवताओं में सतोगुण के रूप में तथा वासुकि में तमोगुण के रूप में प्रविष्ट हो गये।

तात्पर्य : इस भौतिक जगत में हर कोई प्रकृति के विभिन्न गुणों के अधीन है। मन्दर पर्वत द्वारा मन्थन किये जाने में तीन अलग-अलग दल थे—देवता जो सतोगुणी थे, असुर जो रजोगुणी थे तथा नाग वासुकि जो तमोगुणी था। चूँकि सभी लोग थके जा रहे थे (वासुकि तो मरने ही वाला था) अतएव भगवान् विष्णु उन्हें समुद्र मन्थन चालू रखने के लिए प्रोत्साहित करने के हेतु उनमें उनके अपने अपने गुणों—सतो, रजो तथा तमों गुणों—के अनुसार प्रविष्ट हो गये।

उपर्यगेन्द्रं गिरिराडिवान्य

आक्रम्य हस्तेन सहस्रबाहुः ।

तस्थौ दिवि ब्रह्मभवेन्द्रमुख्यै-

रभिष्टवद्भिः सुमनोऽभिवृष्टः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

उपरि—चोटी पर; अगेन्द्रम्—विशाल पर्वत; गिरि-राट्—पर्वतों का राजा; इव—सदृश; अन्यः—दूसरा; आक्रम्य—पकड़ कर; हस्तेन—एक हाथ से; सहस्र-बाहुः—एक हजार हाथों वाला; तस्थौ—स्थित; दिवि—आकाश में; ब्रह्म—ब्रह्माजी; भव—शिवजी; इन्द्र—स्वर्ग का राजा इन्द्र; मुख्यैः—प्रमुखों द्वारा; अभिष्टवद्भिः—भगवान् की स्तुति की; सुमनः—फूल; अभिवृष्टः—बरसा कर।

तब मन्दर पर्वत की चोटी पर भगवान् ने अपने आपको हजारों भुजाओं सहित प्रकट किया जो अन्य विशाल पर्वत की तरह लग रहे थे और एक हाथ से मन्दर पर्वत को पकड़े रखा। तब ब्रह्मा, शिव, इन्द्र तथा अन्य देवताओं ने उच्च लोकों में भगवान् की स्तुति की और उन पर फूलों की वर्षा की।

तात्पर्य : जब मन्दर पर्वत दोनों ओर से खींचा जा रहा था, तो संतुलन बनाये रखने के लिए भगवान् इसकी चोटी पर एक दूसरे विशाल पर्वत के रूप में प्रकट हुए। तब ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्र ने भी अपना-अपना विस्तार किया और भगवान् पर फूल बरसाये।

उपर्यधश्चात्मनि गोत्रनेत्रयोः

परेण ते प्राविशता समेधिताः ।

ममन्थुरब्धि तरसा मदोत्कटा

महाद्रिणा क्षोभितनक्रचक्रम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

उपरि—ऊपर; अधः च—तथा नीचे; आत्मनि—देवों तथा असुरों में; गोत्र-नेत्रयोः—पर्वत तथा वासुकि को, जो रस्सी की तरह प्रयुक्त हो रहा था; परेण—भगवान् द्वारा; ते—वे; प्राविशता—उनके भीतर प्रवेश कर गये; समेधिताः—अत्यन्त विक्षुब्ध;

ममन्थुः—मथा; अब्धिम्—क्षीरसागर को; तरसा—अत्यन्त बलपूर्वक; मद-उत्कटाः—मदान्ध होकर; महा-अद्रिणा—मन्दर पर्वत से; क्षोभित—क्षुब्ध; नक्र-चक्रम्—जल के सारे मगर।

देवता तथा असुर अमृत के लिए मानो मतवाले होकर कार्य कर रहे थे क्योंकि भगवान् ने उन्हें प्रोत्साहित कर रखा था; वे पर्वत के ऊपर और नीचे सभी जगह थे और वे देवताओं, असुरों, वासुकि तथा पर्वत में भी प्रविष्ट हो गए थे। देवताओं तथा असुरों के बल से, क्षीरसागर इतनी शक्ति के साथ विलोडित हो रहा था कि जल के सारे मगरमच्छ अत्यधिक विचलित हो उठे। तो भी समुद्र का मन्थन इस तरह चलता रहा।

अहीन्द्रसाहस्रकठोरदृङ्मुख-

श्वासाग्निधूमाहतवर्चसोऽसुराः ।

पौलोमकालेयबलील्वलादयो

दवाग्निदग्धाः सरला इवाभवन् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

अहीन्द्र—सर्पों के राजा का; साहस्र—हजारों; कठोर—अत्यन्त कठोर; दृक्—दिशाएँ; मुख—मुख से; श्वास—साँस; अग्नि—बाहर निकलती हुई अग्नि; धूम—धुँआ; आहत—प्रभावित होकर; वर्चसः—किरणों से; असुराः—असुरगण; पौलोम—पौलोम; कालेय—कालेय; बलि—बलि; इल्वल—इल्वल; आदयः—आदि; दव-अग्नि—जंगल की अग्नि से; दग्धाः—जले हुए; सरलाः—सरल वृक्ष; इव—सदृश; अभवन्—हो गये।

वासुकि के हजारों नेत्र तथा मुख थे। उसके मुख से धुँआ तथा अग्नि की लपटें निकल रही थीं जिससे पौलोम, कालेय, बलि, इल्वल आदि असुरगण पीड़ित हो रहे थे। इस तरह सारे असुर जो जंगल की आग से जले हुए सरल वृक्ष की भाँति प्रतीत हो रहे थे धीरे-धीरे शक्तिहीन हो गए।

देवांश्च तच्छ्वासशिखाहतप्रभान्

धूम्राम्बरस्त्रग्वरकञ्चुकाननान् ।

समभ्यवर्षन्भगवद्वशा घना

ववुः समुद्रोर्ध्वपगूढवायवः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

देवान्—सारे देवता; च—भी; तत्—वासुकि के; श्वास—साँस लेने से; शिखा—लपटों से; हत—प्रभावित होकर; प्रभान्—उनकी शारीरिक कान्ति; धूम्र—धुँआदार; अम्बर—वस्त्र; स्त्रक्-वर—श्रेष्ठ माला; कञ्चुक—आभूषण; आननान्—तथा चेहरे; समभ्यवर्षन्—अच्छी तरह वर्षा की गई; भगवत्-वशाः—भगवान् के अधीन; घनाः—बादल के; ववुः—उड़ने लगे; समुद्र—क्षीरसागर के; ऊर्मि—लहरों से; उपगूढ—जल के कणों से युक्त; वायवः—मन्द समीर।

चूँकि वासुकि की दहकती साँस से देवता भी प्रभावित हुए थे अतएव उनकी शारीरिक कान्ति घट गई और उनके वस्त्र, मालाएँ, आयुध तथा उनके मुखमण्डल धुँएँ से काले पड़ गये। किन्तु भगवत्कृपा से समुद्र के ऊपर बादल प्रकट हो गए और वे मूसलाधार वर्षा करने लगे।

समुद्री लहरों से जल के कण लेकर मन्द समीर बहने लगे जिससे देवताओं को राहत मिल सके ।

मथ्यमानात्तथा सिन्धोर्देवासुरवरूथपैः ।

यदा सुधा न जायेत निर्ममन्थाजितः स्वयम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

मथ्यमानात्—मथे जाने से; तथा—इस प्रकार से; सिन्धोः—क्षीरसागर से; देव—देवताओं का; असुर—तथा असुरों का; वरूथ-पैः—श्रेष्ठतम के द्वारा; यदा—जब; सुधा—अमृत; न जायेत—बाहर नहीं आया; निर्ममन्थ—मन्थन किया; अजितः—भगवान् ने; स्वयम्—स्वयं ।

जब श्रेष्ठतम देवताओं तथा असुरों के द्वारा इतना उद्यम करने पर भी क्षीरसागर से अमृत नहीं

निकला तो स्वयं भगवान् अजित ने समुद्र को मथना प्रारम्भ किया ।

मेघश्यामः कनकपरिधिः कर्णविद्योतविद्युन्

मूर्ध्नि भ्राजद्विलुलितकचः स्रग्धरो रक्तनेत्रः ।

जैत्रैर्दोर्भिर्जगदभयदैर्दन्दशूकं गृहीत्वा

मथ्न्मथ्ना प्रतिगिरिवाशोभताथो धृताद्रिः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

मेघ-श्यामः—बादल जैसे श्याम रंग वाले; कनक-परिधिः—पीले वस्त्र पहने; कर्ण—कानों में; विद्योत-विद्युत्—जिसके कुंडल बिजली की तरह चमक रहे थे; मूर्ध्नि—सिर पर; भ्राजत्—चमकते हुए; विलुलित—हिलते हुए; कचः—जिसके बाल; स्रक्-धरः—फूलों की माला पहने; रक्त-नेत्रः—लाल-लाल आँखों वाले; जैत्रैः—विजय प्राप्त; दोर्भिः—भुजाओं से; जगत्—विश्व को; अभय-दैः—अभयदान देने वाले के द्वारा; दन्दशूकम्—सर्प ( वासुकि ) को; गृहीत्वा—पकड़ कर; मथ्न्—मथते हुए; मथ्ना—मथानी ( मन्दर पर्वत ) से; प्रतिगिरिः—दूसरा पर्वत; इव—सदृश; अशोभत—शोभा पा रहा था; अथो—तब; धृत-अद्रिः—पर्वत धारण किये ।

भगवान् श्याम बादल की भाँति प्रकट हो रहे थे। वे पीले वस्त्र पहने थे, उनके कान के कुंडल बिजली की तरह चमक रहे थे और उनके बाल कन्धों पर बिखरे हुए थे। वे फूलों की माला पहने थे और उनकी आँखे गुलाबी थीं। विश्वभर में अभय देने वाली अपनी बलिष्ठ यशस्वी भुजाओं से उन्होंने वासुकि को पकड़ लिया और वे मन्दर पर्वत को मथानी बनाकर समुद्र का मन्थन करने लगे। जब वे इस प्रकार व्यस्त थे तो वे इन्द्रनील नामक सुन्दर पर्वत की भाँति प्रतीत हो रहे थे।

निर्मथ्यमानादुदधेरभूद्विषं

महोल्बणं हालहलाह्वमग्रतः ।

सम्भ्रान्तमीनोन्मकराहिकच्छपात्

तिमिद्विपग्राहतिमिङ्गिलाकुलात् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

निर्मथ्यमानात्—जब मथने का कार्य चल रहा था; उदधे:—समुद्र से; अभूत्—था; विषम्—विष; महा-उल्बणम्—अत्यन्त भयानक; हालहल-आह्वम्—हालहल नाम से; अग्रतः—सर्वप्रथम; सम्भ्रान्त—क्षुब्ध तथा इधर-उधर गतिशील; मीन—विभिन्न प्रकार की मछलियाँ; उन्मकर—हांगर; अहि—तरह-तरह के सर्प; कच्छपात्—तरह-तरह के कछुओं से; तिमि—व्हेल मछलियाँ; द्विप—समुद्री हाथी; ग्राह—घड़ियाल; तिमिङ्गिल—छोटी व्हेलों को निगल जाने वाली बड़ी व्हेल मछलियाँ; आकुलात्—अत्यधिक व्याकुल होकर।

मछलियाँ, हांगर, कछुवे तथा सर्प अत्यन्त विचलित एवं क्षुब्ध थे। सारा समुद्र उत्तेजित हो उठा और व्हेल, समुद्री हाथी, घड़ियाल तथा तिमिङ्गिल मछली जैसे बड़े-बड़े जलचर सतह पर आ गये। जब इस प्रकार से समुद्र-मन्थन हो रहा था, तो इससे सर्वप्रथम हालहल नामक घातक विष उत्पन्न हुआ।

तदुग्रवेगं दिशि दिश्युपर्यधो

विसर्पदुत्सर्पदसह्यमप्रति ।

भीताः प्रजा दुद्रुवुरङ्ग सेश्वरा

अरक्ष्यमाणाः शरणं सदाशिवम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; उग्र-वेगम्—अत्यन्त भयानक तथा तेज विष; दिशि दिशि—सभी दिशाओं में; उपरि—ऊपर; अधः—नीचे; विसर्पत्—मुड़ता हुआ; उत्सर्पत्—ऊपर जाते हुए; असह्यम्—असह्य; अप्रति—वश में न होने वाला; भीताः—अत्यधिक डरे हुए; प्रजाः—सारे विश्वों के निवासी; दुद्रुवुः—इधर-उधर जा रहे थे; अङ्ग—हे महाराज परीक्षित; स-ईश्वराः—भगवान् सहित; अरक्ष्यमाणाः—असुरक्षित; शरणम्—शरण; सदाशिवम्—शिवजी के चरणकमलों में।

हे राजा! जब वह उग्र विष ऊपर नीचे तथा सभी दिशाओं में वेग के साथ फैलने लगा तो सारे देवता भगवान् समेत शिवजी ( सदाशिव ) के पास गये। अपने को असुरक्षित तथा अत्यन्त भयभीत पाकर वे सब उनकी शरण मांगने लगे।

तात्पर्य : कोई चाहे तो यह प्रश्न कर सकता है कि जब साक्षात् भगवान् वहाँ उपस्थित थे तो वे सारे देवताओं तथा प्रजा को साथ लेकर सदाशिव की शरण में क्यों गये? उन्होंने स्वयं हस्तक्षेप क्यों नहीं किया? इस प्रसंग में श्रील मध्वाचार्य सावधान करते हैं—

रुद्रस्य यशसोऽर्थाय स्वयं विष्णुर्विषं विभुः ।

न सञ्जहे समर्थोऽपि वायुं चोचे प्रशान्तये ॥

भगवान् विष्णु स्थिति को संभालने में सक्षम थे, किन्तु शिवजी को श्रेय प्रदान करने के लिए ही उन्होंने कोई कार्यवाही नहीं की। शिवजी ने बाद में सारा विष पी लिया और उसे अपने गले में रख

लिया।

विलोक्य तं देववरं त्रिलोक्या

भवाय देव्याभिमतं मुनीनाम् ।

आसीनमद्रावपवर्गहेतो-

स्तपो जुषाणं स्तुतिभिः प्रणेमुः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

विलोक्य—देखकर; तम्—उस; देव-वरम्—देवताओं में सर्वश्रेष्ठ को; त्रि-लोक्याः—तीनों लोकों के; भवाय—उन्नति के लिए; देव्या—अपनी पत्नी भवानी सहित; अभिमतम्—स्वीकृत; मुनीनाम्—मुनियों का; आसीनम्—एकसाथ बैठे; अद्रौ—कैलाश पर्वत की चोटी से; अपवर्ग-हेतोः—मुक्ति की कामना करते; तपः—तपस्या में; जुषाणम्—सेवित; स्तुतिभिः—स्तुतियों से; प्रणेमुः—सादर नमस्कार किया।

देवताओं ने शिवजी को अपनी पत्नी भवानी सहित कैलाश पर्वत की चोटी पर तीनों लोकों के मंगलमय अभ्युदय हेतु तपस्या करते हुए देखा। मुक्ति की कामना करने वाले मुनि-गण उनकी पूजा कर रहे थे। देवताओं ने उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक प्रार्थना की।

श्रीप्रजापतय ऊचुः

देवदेव महादेव भूतात्मन्भूतभावन ।

त्राहि नः शरणापन्नांस्त्रैलोक्यदहनाद्विषात् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

श्री-प्रजापतयः ऊचुः—प्रजापतियों ने कहा; देव-देव—हे देवताओं में श्रेष्ठ, महादेव; महा-देव—हे महान् देवता; भूत-आत्मन्—इस संसार में हरएक के प्राण तथा आत्मा स्वरूप; भूत-भावन—हे सबके सुख तथा समृद्धि के कारण; त्राहि—उद्धार करें; नः—हमारा; शरण-आपन्नान्—अपने शरणागतों को; त्रैलोक्य—तीनों लोकों का; दहनात्—दहन करने वाले; विषात्—इस विष से।

प्रजापतियों ने कहा : हे देवश्रेष्ठ महादेव, हे समस्त जीवों के परमात्मा तथा उनकी सुख-समृद्धि के कारण! हम आपके चरणकमलों की शरण में आये हैं। अब आप तीनों लोकों में फैलने वाले इस उग्र विष से हमारी रक्षा करें।

तात्पर्य : चूँकि शिवजी पर संहार करने का उत्तरदायित्व है, तो फिर सुरक्षा के लिए उनके पास क्यों जाया जाये जो भगवान् विष्णु का कार्य है? ब्रह्माजी सृजन करते हैं, शिवजी संहार करते हैं, किन्तु ब्रह्मा तथा शिव दोनों ही भगवान् विष्णु के अवतार हैं और शक्त्यावेश अवतार कहलाते हैं। उन्हें सर्वव्यापी विष्णु के ही समान विशेष शक्ति प्राप्त रहती है। अतएव जब भी रक्षा के लिए शिवजी से स्तुतियाँ की जाती हैं, तो वे वास्तव में भगवान् विष्णु के लिए होती हैं क्योंकि शिवजी तो विनाश के

निमित्त हैं। शिवजी ईश्वरों में से एक हैं, जो शक्त्यावेश अवतार कहलाते हैं। अतएव उन्हें विष्णु के समान गुणों वाला कहकर सम्बोधित किया जा सकता है।

त्वमेकः सर्वजगत ईश्वरो बन्धमोक्षयोः ।

तं त्वामर्चन्ति कुशलाः प्रपन्नार्तिहरं गुरुम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

त्वम् एकः—निस्सन्देह तुम हो; सर्व-जगतः—तीनों लोकों के; ईश्वरः—नियन्ता; बन्ध-मोक्षयोः—बन्धन तथा मोक्ष दोनों के; तम्—उस नियन्ता को; त्वाम् अर्चन्ति—आपको पूजते हैं; कुशलाः—धनधान्य चाहने वाले व्यक्ति; प्रपन्न-आर्ति-हरम्—शरणागत भक्तों के समस्त कष्टों का हरण करने वाला; गुरुम्—जो समस्त पतितात्माओं के लिए सदुपदेशक का कार्य करे उसे।

हे प्रभु! आप सारे विश्व के बन्धन तथा मोक्ष के कारण हैं क्योंकि आप इसके शासक हैं। जो लोग आध्यात्मिक चेतना में बढ़े-चढ़े हैं, वे आपकी शरण में जाते हैं, अतएव आप उनके कष्टों को दूर करने वाले हैं और उनकी मुक्ति के भी आप ही कारण हैं। अतएव हम आपकी पूजा करते हैं।

तात्पर्य : वास्तव में विष्णु ही सारे सौभाग्य के पालन-पोषणहारे हैं। यदि मनुष्य विष्णु की शरण ग्रहण करता है, तो देवताओं ने शिवजी की शरण क्यों ग्रहण की? उन्होंने ऐसा इसलिए किया क्योंकि वे भौतिक संसार की सृष्टि शिवजी के माध्यम से करते हैं और शिवजी विष्णु की ओर से कार्य करते हैं। जब भगवान् भगवद्गीता (१४.४) में यह कहते हैं कि वे सारे जीवों के पिता हैं (अहं बीजप्रदः पिता) तो यह शिवजी के माध्यम से विष्णु द्वारा सम्पन्न कार्यों का द्योतक है। भगवान् विष्णु सदैव भौतिक कार्यकलापों से विरक्त रहते हैं और जब उन्हें भौतिक कार्यकलाप सम्पन्न करने होते हैं, तो वे शिवजी के माध्यम से करते हैं। अतएव शिवजी की पूजा विष्णु के स्तर पर की जाती है। जब विष्णु बहिरंगा शक्ति से अछूते रहते हैं, तो वे भगवान् विष्णु होते हैं, किन्तु जब वे उसके सम्पर्क में रहते हैं, तो वे शिवजी के रूप में प्रकट होते हैं।

गुणमय्या स्वशक्त्यास्य सर्गस्थित्यप्ययान्विभो ।

धत्से यदा स्वदृग्भूमन्ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

गुण-मय्या—तीनों गुणों में कार्य करते हुए; स्व-शक्त्या—अपनी बहिरंगा शक्ति द्वारा; अस्य—इस जगत का; सर्ग-स्थिति-अप्ययान्—सृष्टि, पालन तथा संहार; विभो—हे प्रभु; धत्से—आप सम्पन्न करते हैं; यदा—जब; स्व-दृक्—आप अपने को प्रकट करते हैं; भूमन्—हे महान्; ब्रह्म-विष्णु-शिव-अभिधाम्—ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के रूप में।

हे प्रभु! आप स्वयं-प्रकाशित तथा सर्वश्रेष्ठ हैं। आप अपनी निजी शक्ति से इस भौतिक जगत का सृजन करते हैं और जब आप सृष्टि, पालन तथा संहार का कार्य करते हैं, तो ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर के नाम धारण कर लेते हैं।

तात्पर्य : यह स्तुति वास्तव में पुरुष-रूप भगवान् विष्णु को अर्पित की गई है, जो अपने गुण अवतारों में ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर का नाम ग्रहण कर लेते हैं।

त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सदसद्भावभावनम् ।

नानाशक्तिभिराभातस्त्वमात्मा जगदीश्वरः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; ब्रह्म—निराकार ब्रह्म; परमम्—परम; गुह्यम्—गुह्य, गोपनीय; सत्-असत्-भाव-भावनम्—सब की सृष्टि का कारण, इसका कारण तथा फल; नाना-शक्तिभिः—अनेक प्रकार की शक्तियों से; आभातः—व्यक्त; त्वम्—तुम हो; आत्मा—परमात्मा; जगत्-ईश्वरः—भगवान्।

आप समस्त कारणों के कारण, आत्म-प्रकाशित, अचिन्त्य, निराकार ब्रह्म हैं, जो मूलतः परब्रह्म हैं। आप इस दृश्य जगत में विविध शक्तियों को प्रकट करते हैं।

तात्पर्य : यह स्तुति निराकार ब्रह्म की है, जो परब्रह्म की तेजवान् किरणों से युक्त होता है। परब्रह्म श्रीभगवान् हैं ( परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् )। जब शिवजी की पूजा परब्रह्म के रूप में की जाती है, तो वह भगवान् विष्णु के लिए होती है।

त्वं शब्दयोनिर्जगदादिरात्मा

प्राणेन्द्रियद्रव्यगुणः स्वभावः ।

कालः क्रतुः सत्यमृतं च धर्म-

स्त्वय्यक्षरं यत्रिवृदामनन्ति ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—आप; शब्द-योनिः—वैदिक ज्ञान का स्रोत; जगत्-आदिः—सृष्टि का मूल कारण; आत्मा—आत्मा; प्राण—जीवनी शक्ति; इन्द्रिय—इन्द्रियाँ; द्रव्य—भौतिक तत्त्व; गुणः—तीन गुण; स्व-भावः—प्रकृति; कालः—नित्य समय; क्रतुः—यज्ञ; सत्यम्—सत्य; ऋतम्—सच्चाई; च—तथा; धर्मः—धर्म के दो प्रकार; त्वयि—आपमें; अक्षरम्—मूल अक्षर, ओङ्कार; यत्—जो; त्रि-वृत्—तीन अक्षरों वाला, अ, उ, म् से युक्त; आमनन्ति—कहते हैं।

हे स्वामी! आप वैदिक ज्ञान के मूल स्रोत हैं। आप भौतिक सृष्टि, प्राण, इन्द्रियों, पाँच तत्त्वों, तीन गुणों तथा महत् तत्त्व के मूल कारण हैं। आप नित्य काल, संकल्प तथा सत्य और ऋत कही जाने वाली दो धार्मिक प्रणालियाँ हैं। आप तीन अक्षरों—अ, उ तथा म् वाले ॐ शब्द

के आश्रय हैं।

अग्निर्मुखं तेऽखिलदेवतात्मा  
क्षितिं विदुर्लोकभवाद्भिपङ्कजम् ।  
कालं गतिं तेऽखिलदेवतात्मनो  
दिशश्च कर्णौ रसनं जलेशम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

अग्निः—अग्नि; मुखम्—मुँह; ते—आपका; अखिल-देवता-आत्मा—सारे देवताओं के उद्गम; क्षितिम्—महिमंडल; विदुः—वे जानते हैं; लोक-भव—हे समस्त लोकों के उद्गम; अद्भि-पङ्कजम्—आपके चरणकमल; कालम्—नित्य काल; गतिम्—प्रगति; ते—आपका; अखिल-देवता-आत्मनः—सभी देवताओं के सार समाहार; दिशः—सारी दिशाएँ; च—तथा; कर्णौ—आपके कान; रसनम्—स्वाद; जल-ईशम्—जल के अधिष्ठाता देवता।

हे समस्त लोकों के पिता! विद्वान लोग जानते हैं कि अग्नि आपका मुख है, पृथ्वी आपके चरणकमल हैं, आप निखिल देवरूप हैं, नित्य काल आपकी गति है, सारी दिशाएँ आपके कान हैं और जल का स्वामी वरुण आपकी जीभ है।

तात्पर्य : श्रुतिमन्त्रों में कहा गया है—अग्निः सर्वदेवताः—‘अग्नि सारे देवताओं का पुंज है।’ अग्नि भगवान् का मुख है। अग्नि के द्वारा ही भगवान् सारी यज्ञ-आहुतियाँ स्वीकार करते हैं।

नाभिर्नभस्ते श्वसनं नभस्वान्  
सूर्यश्च चक्षुषि जलं स्म रेतः ।  
परावरात्माश्रयणं तवात्मा  
सोमो मनो द्यौर्भगवन्शिरस्ते ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

नाभिः—नाभि; नभः—आकाश; ते—आपकी; श्वसनम्—साँस लेना; नभस्वान्—वायु; सूर्यः च—तथा सूर्य का गोला; चक्षुषि—आपकी आँखें; जलम्—जल; स्म—निस्सन्देह; रेतः—वीर्य; पर-अवर-आत्म-आश्रयणम्—उच्च एवं निम्न सारे जीवों का आश्रय; तव—तुम्हारा; आत्मा—आत्मा; सोमः—चन्द्रमा; मनः—मन; द्यौः—उच्चतर लोक मण्डल; भगवन्—हे प्रभु; शिरः—सिर; ते—तुम्हारा।

हे प्रभु! आकाश आपकी नाभि है, वायु आपकी श्वसन क्रिया है, सूर्य आपकी आँखें हैं तथा जल आपका वीर्य है। आप समस्त प्रकार के उच्च तथा निम्न जीवों के आश्रय हैं। चन्द्रदेव आपका मन है। उच्चतर लोक मण्डल आपका सिर है।

कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसङ्घा  
रोमाणि सर्वौषधिवीरुधस्ते ।

छन्दांसि साक्षात्तव सप्त धातव-

स्त्रयीमयात्मन्हृदयं सर्वधर्मः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

कुक्षिः—उदर, कोख; समुद्राः—समुद्र; गिरयः—पर्वत; अस्थि—हड्डियाँ; सङ्गाः—मेल, समूह; रोमाणि—शरीर के रोएँ; सर्व—सभी; औषधि—औषधियाँ; वीरुधः—पौधे तथा लताएँ; ते—आपका; छन्दांसि—वैदिक मंत्र; साक्षात्—प्रत्यक्ष; तव—आपका; सप्त—सात; धातवः—शरीर के स्तर ( कोश ); त्रयी-मय-आत्मन्—हे साक्षात् तीनों वेद; हृदयम्—हृदय; सर्व-धर्मः—सभी प्रकार के धर्म।

हे प्रभु! आप साक्षात् तीनों वेद हैं। सातों समुद्र आपके उदर हैं और पर्वत आपकी हड्डियाँ हैं। सारी औषधियाँ, लताएँ तथा वनस्पतियाँ आपके शरीर के रोएँ हैं। गायत्री जैसे वैदिक मंत्र आपके शरीर के सात कोश हैं और वैदिक धर्म पद्धति आपका हृदय है।

मुखानि पञ्चोपनिषदस्तवेश

यैस्त्रिंशदष्टोत्तरमन्त्रवर्गः ।

यत्तच्छिवाख्यं परमात्मतत्त्वं

देव स्वयंज्योतिरवस्थितिस्ते ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

मुखानि—मुखमण्डल; पञ्च—पाँच; उपनिषदः—वैदिक वाङ्मय; तव—तुम्हारा; ईश—हे स्वामी; यैः—जिससे; त्रिंशत्-अष्ट-उत्तर-मन्त्र-वर्गः—अड़तीस महत्त्वपूर्ण वैदिक मंत्रों की कोटि में; यत्—जो; तत्—जैसा है; शिव-आख्यम्—शिवनाम से विख्यात; परमात्म-तत्त्वं—जो परमात्मा विषयक सत्य की पुष्टि करता है; देव—हे भगवान्; स्वयम्-ज्योतिः—आत्म प्रकाशित; अवस्थितिः—स्थिति; ते—आपकी।

हे प्रभो! पाँच महत्त्वपूर्ण वैदिक मंत्र आपके पाँच मुखों के द्योतक हैं जिनसे अड़तीस महत्त्वपूर्ण वैदिक मंत्र उत्पन्न हुए हैं। आप शिव नाम से विख्यात स्वयं प्रकाशित हैं। आप परमात्मा नाम से प्रत्यक्ष परम सत्य के रूप में स्थित हैं।

तात्पर्य : इस सम्बन्ध में जिन पाँच मंत्रों का उल्लेख हुआ है वे हैं—पुरुष, अघोर, सद्योजात, वामदेव तथा ईशान। ये पाँच मंत्र उन अड़तीस विशेष मंत्रों की कोटि में आते हैं, जो शिवजी द्वारा उच्चारित होते हैं; इसीलिए वे शिवजी या महादेव कहलाते हैं। उनके शिव अर्थात् कल्याणकारी कहलाने का एक अन्य कारण यह है कि वे परमात्मा कहलाने वाले ठीक भगवान् विष्णु की तरह आत्मप्रकाशित हैं। चूँकि शिवजी भगवान् विष्णु के प्रत्यक्ष अवतार हैं अतएव वे विष्णु के प्रत्यक्ष प्रतिनिधि हैं। इस तथ्य की पुष्टि एक वैदिक मंत्र—*पतिं विश्वस्यात्मेश्वरं शाश्वतं शिवम् अच्युतम्*—से होती है। परमात्मा अनेक नामों से जाने जाते हैं जिनमें से महेश्वर, शिव तथा अच्युत विशेषतः उल्लेखनीय हैं।

छाया त्वधर्मोर्मिषु यैर्विसर्गो  
नेत्रत्रयं सत्त्वरजस्तमांसि ।  
साङ्ख्यात्मनः शास्त्रकृतस्तवेक्षा  
छन्दोमयो देव ऋषिः पुराणः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

छाया—छाया; तु—लेकिन; अधर्म—ऊर्मिषु—अधर्म की लहरों में, यथा काम, क्रोध, लोभ, मोह में; यैः—जिससे; विसर्गः—इतनी सारी सृष्टियाँ; नेत्र-त्रयम्—तीन आँखें; सत्त्व—सतो गुण; रजः—रजोगुण; तमांसि—तथा तमोगुण; साङ्ख्य-आत्मनः—सारे वैदिक साहित्य का उद्गम; शास्त्र—शास्त्र; कृतः—बनाया हुआ; तव—आपकी; ईक्षा—चितवन मात्र से; छन्दः-मयः—वैदिक छन्दों से युक्त; देव—हे प्रभु; ऋषिः—सारा वैदिक साहित्य; पुराणः—तथा पुराण ।

हे भगवान्! आपकी छाया अधर्म में दिखती है, जिससे नाना प्रकार की अधार्मिक सृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं। प्रकृति के तीनों गुण—सत्त्व, रज तथा तमो—आपके तीन नेत्र हैं। छन्दों से युक्त सारे वैदिक ग्रंथ आपसे उद्भूत हैं क्योंकि उनके संग्रहकर्ताओं ने आपकी कृपादृष्टि प्राप्त करके ही उन शास्त्रों को लिखा।

न ते गिरित्राखिललोकपाल-  
विरिञ्चवैकुण्ठसुरेन्द्रगम्यम् ।  
ज्योतिः परं यत्र रजस्तमश्च  
सत्त्वं न यद्ब्रह्म निरस्तभेदम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; ते—आपका; गिरि-त्र—हे पर्वतों के राजा; अखिल-लोक-पाल—भौतिक कार्यकलापों के विभागों के सारे निदेशक; विरिञ्च—ब्रह्मा; वैकुण्ठ—भगवान् विष्णु; सुर-इन्द्र—स्वर्ग का राजा; गम्यम्—सरलता से समझा जाने वाला; ज्योतिः—तेज; परम्—दिव्य; यत्र—जहाँ; रजः—रजोगुण; तमः च—तथा तमोगुण; सत्त्वम्—सतो गुण; न—नहीं; यत् ब्रह्म—जो निराकार ब्रह्म है; निरस्त-भेदम्—देवताओं तथा मनुष्यों में किसी अन्तर के बिना ।

हे गिरीश! चूँकि निराकार ब्रह्म तेज सतो, रजो तथा तमो गुणों से परे है अतएव इस भौतिक जगत के विभिन्न निदेशक ( लोकपाल ) न तो इसकी प्रशंसा कर सकते हैं न ही यह जान सकते हैं कि वह कहाँ है। वह ब्रह्मा, विष्णु या स्वर्ग के राजा महेन्द्र द्वारा भी ज्ञेय नहीं है।

तात्पर्य : ब्रह्मज्योति वास्तव में भगवान् का तेज है। जैसाकि ब्रह्मसंहिता (५.४०) में कहा गया है—

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि  
कोटिष्वशेष वसुधादिविभूतिभिन्नम् ।  
तद्ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेषभूतं

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

“मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ जो महान्शक्ति से युक्त हैं। उनके दिव्य रूप का चमकीला तेज निराकार ब्रह्म है, जो परम, पूर्ण तथा असीम है और असंख्य लोकों की विविधताओं को उनके विभिन्न तेज सहित करोड़ों ब्रह्माण्डों के रूप में प्रदर्शित करता है।” यद्यपि ब्रह्म का निराकार स्वरूप भगवान् की किरणों का विस्तार (अंश) होता है, किन्तु उन्हें उन निर्विशेषवादियों की देखभाल करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती जो ब्रह्मज्योति में प्रवेश करते हैं। *भगवद्गीता* (९.४) में कृष्ण कहते हैं— *मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना*—मैं अपने निराकार स्वरूप में इस सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त रहता हूँ। इस प्रकार *अव्यक्तमूर्ति* अर्थात् निराकार स्वरूप निश्चय ही कृष्ण की शक्ति का विस्तार है। इसी ब्रह्मतेज में तल्लीन होने के इच्छुक मायावादी लोग शिवजी की पूजा करते हैं। श्लोक २९ में उल्लिखित मंत्र *मुखानि पञ्चोपनिषदस्तवेश* कहलाते हैं। मायावादी लोग शिवजी की पूजा करते समय इन सभी मंत्रों को गम्भीरतापूर्वक ग्रहण करते हैं। ये मंत्र इस प्रकार हैं—

१) तत् पुरुषाय विद्महे शान्त्यै २) महादेवाय धीमहि विद्यायै ३) तन्नो रुद्रः प्रतिष्ठायै ४) प्रचोदयात् धृत्यै ५) अघोरेभ्यस्तमा ६) अथ...अघोरेभ्यो मोहा... ७) अघोरेभ्यो रक्षा... ८) अघोरतरेभ्यो निद्रा... ९) सर्वेभ्यः सर्वव्याध्यै १०) सर्वसर्वेभ्यो मृत्यवे ११) नमस्तेऽस्तु क्षुधा... १२) रुद्ररूपेभ्यस्तृष्णा... १३) वामदेवाय रजा... १४) ज्येष्ठाय स्वाहा... १५) श्रेष्ठाय रत्यै १६) रुद्राय कल्याण्यै १७) कालाय कामा... १८) कलविकरणाय सन्धिन्यै १९) बल-विक्रणाय क्रिया... २०) बलाय वृद्ध्यै २१) बलच्छाया... २२) प्रमथनाय धात्र्यै २३) सर्वभूत-दमनाय भ्रामण्यै २४) मनः शोषिण्यै २५) उन्मनाय ज्वरा... २६) सद्योजातं प्रपद्यामि सिद्ध्यै २७) सद्योजाताय वै नमः ऋद्ध्यै २८) भवे दित्यै २९) अभवे लक्ष्म्यै ३०) नातिभवे मेधा... ३१) भजस्व मां कान्त्यै ३२) भव स्वधा... ३३) उद्भवाय प्रभा... ३४) ईशानः सर्व विद्यानां शशिन्यै ३५) ईश्वरः सर्वभूतानाम् अभयदा... ३६) ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोधिपतिर्ब्रह्मन् ब्रह्मेष्टदा... ३७) शिवो मे अस्तु मरीच्यै ३८) सदाशिवः ज्वालिन्यै ।

निराकार ब्रह्म भौतिक सृष्टि के अन्य लोकपालों तक को अज्ञात हैं जिनमें ब्रह्मा, इन्द्र तथा विष्णुजी तक सम्मिलित हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि विष्णु जी सर्वज्ञ नहीं हैं। भगवान् विष्णु सर्वज्ञ हैं, किन्तु उन्हें यह जानने की आवश्यकता नहीं रहती कि उनके सर्वव्यापी अंश में क्या हो रहा है। अतएव

भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं कि यद्यपि प्रत्येक वस्तु उनका अंश है ( मयाततमिदं सर्वम् ), किन्तु उन्हें प्रत्येक वस्तु की निगरानी नहीं करनी होती ( न चाहं तेष्ववस्थितः ) क्योंकि ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्र जैसे अनेक लोकपाल विद्यमान हैं ।

कामाध्वरत्रिपुरकालगराद्यनेक-

भूतद्रुहः क्षपयतः स्तुतये न तत्ते ।

यस्त्वन्तकाल इदमात्मकृतं स्वनेत्र-

वह्निस्फुलिङ्गशिखया भसितं न वेद ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

काम-अध्वर—इन्द्रियतृप्ति के लिए यज्ञ ( यथा दक्ष द्वारा सम्पन्न दक्ष-यज्ञ ); त्रिपुर—त्रिपुरासुर; कालगर—कालगर; आदि— तथा अन्य; अनेक—कई; भूत-द्रुहः—जीवों को कष्ट देने वाले; क्षपयतः—उनके विनाश में लगे हुए; स्तुतये—आपकी स्तुति; न—नहीं; तत्—वह; ते—आपसे बोलते हुए; यः तु—क्योंकि; अन्त-काले—प्रलय के समय; इदम्—इस भौतिक जगत में; आत्म-कृतम्—अपने से किया गया; स्व-नेत्र—आपकी आँखों से; वह्नि-स्फुलिङ्ग-शिखया—आग की चिनगारियों से; भसितम्—भस्मसात्; न वेद—मैं नहीं जानता कि यह कैसे हो रहा है।

जब आपकी आँखों से उद्भूत लपटों तथा चिनगारियों से प्रलय होता है, तो सारी सृष्टि जलकर राख हो जाती है। तो भी आपको पता नहीं चलता कि यह कैसे होता है। अतएव आपके द्वारा दक्ष-यज्ञ, त्रिपुरासुर तथा कालकूट विष विनष्ट किये जाने के विषय में क्या कहा जा सकता है? ऐसे कार्यकलाप आपको अर्पित की जाने वाली स्तुतियों के विषय नहीं बन सकते।

तात्पर्य : चूँकि शिवजी जो भी बड़े काम करते हैं उन्हें वे महत्त्वहीन समझते हैं अतएव मन्थन से उत्पन्न उग्र विष को निरर्थक करने के विषय में क्या कहा जा सकता था? इस तरह देवताओं ने अप्रत्यक्ष रूप से शिवजी से प्रार्थना की कि वे उस कालकूट विष को प्रभावहीन बना दें जो सारे ब्रह्माण्डों में फैल रहा था।

ये त्वात्मारामगुरुभिर्हृदि चिन्तिताङ्घ्रि-

द्वन्द्वं चरन्तमुमया तपसाभितप्तम् ।

कत्थन्त उग्रपरुषं निरतं श्मशाने

ते नूनमूतिमविदंस्तव हातलज्जाः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

ये—जो व्यक्ति; तु—निस्सन्देह; आत्म-राम-गुरुभिः—जो आत्मतुष्ट हैं और संसार भर के गुरु माने जाते हैं; हृदि—हृदय में; चिन्तित-अङ्घ्रि-द्वन्द्वम्—आपके दोनों चरणकमलों का चिन्तन करते; चरन्तम्—विचरण करते; उमया—अपनी प्रियसी उमा के साथ; तपसा अभितप्तम्—तपस्या द्वारा उच्चपद को प्राप्त; कत्थन्ते—आपके कार्यों की आलोचना करते हैं; उग्र-परुषम्—

अभद्र व्यक्ति; निरतम्—सदैव; श्मशाने—श्मशान में; ते—ऐसे व्यक्ति; नूनम्—निस्सन्देह; ऋतिम्—ऐसे कार्यकलाप;  
अविदन्—न जानते हुए; तव—आपके कार्यकलाप; हात-लज्जा:—निर्लज्ज।

सारे विश्व को उपदेश देने वाले महान् आत्मतुष्ट व्यक्ति अपने हृदयों में आपके चरणकमलों का निरन्तर चिन्तन करते हैं, किन्तु जब आपकी तपस्या को न जानने वाले व्यक्ति आपको उमा के साथ विचरते देखते हैं, तो वे आपको भ्रमवश कामी समझते हैं अथवा जब वे आपको श्मशान में घूमते हुए देखते हैं, तो भ्रमवश वे आपको अत्यन्त नृशंस तथा ईर्ष्यालु समझते हैं। निस्सन्देह, वे निर्लज्ज हैं। वे आपके कार्यकलापों को कभी नहीं समझ सकते।

तात्पर्य : शिवजी सर्वोच्च वैष्णव हैं ( वैष्णवानां यथा शम्भुः )। इसलिये कहा गया है— वैष्णवे क्रियामुद्रा विज्ञे ना बुझय। यहाँ तक कि बुद्धिमान् से बुद्धिमान् व्यक्ति भी यह नहीं समझ सकता कि शिवजी जैसा वैष्णव क्या करता है अथवा कैसे करता है। जो लोग काम तथा क्रोध के वशीभूत हैं, वे शिवजी की महिमा का अनुमान नहीं लगा सकते जिनका पद सदैव दिव्य है। कामेच्छाओं से सम्बद्ध सारे कार्यों में शिवजी आत्माराम के निमित्त मात्र हैं। अतएव सामान्य व्यक्तियों को शिवजी तथा उनके कार्यकलापों को समझने का यत्न नहीं करना चाहिए। जो शिवजी के कार्यकलापों की आलोचना करने का प्रयास करता है, वह निर्लज्ज है।

तत्तस्य ते सदसतोः परतः परस्य

नाञ्जः स्वरूपगमने प्रभवन्ति भूमनः ।

ब्रह्मादयः किमुत संस्तवने वयं तु

तत्सर्गसर्गविषया अपि शक्तिमात्रम् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

तत्—अतएव; तस्य—उसका; ते—आपका; सत्-असतोः—चर तथा अचर सारे जीवों का; परतः—दिव्य पद पर स्थित;  
परस्य—समझ पाना दुष्कर; न—न तो; अञ्जः—जैसा है; स्वरूप-गमने—आपकी वास्तविकता तक पहुँच पाना; प्रभवन्ति—सम्भव है; भूमनः—हे महान्; ब्रह्म-आदयः—ब्रह्मा जैसे पुरुष; किम् उत—अन्यों के विषय में क्या कहा जाये; संस्तवने—प्रार्थना करने में; वयम् तु—जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है; तत्—आपका; सर्ग-सर्ग-विषयाः—सृष्टि की सृष्टियाँ; अपि—यद्यपि; शक्ति-मात्रम्—यथाशक्ति।

ब्रह्मा जी तथा अन्य देवतागण जैसे व्यक्ति तक आपकी स्थिति नहीं समझ सकते क्योंकि आप चर तथा अचर सृष्टि से भी परे हैं। चूँकि आपको सही रूप में कोई नहीं समझ सकता तो फिर भला कोई किस तरह आपकी स्तुति कर सकता है? यह असम्भव है। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है, हम ब्रह्मा जी की सृष्टि के प्राणी हैं। अतएव ऐसी परिस्थितियों में हम आपकी ठीक से

स्तुति नहीं कर सकते, किन्तु हमने अपनी बुद्धि के अनुसार अपनी भावनाएँ व्यक्त की हैं।

एतत्परं प्रपश्यामो न परं ते महेश्वर ।

मृडनाय हि लोकस्य व्यक्तिस्तेऽव्यक्तकर्मणः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

एतत्—ये सारी वस्तुएँ; परम्—दिव्य; प्रपश्यामः—हम देख सकते हैं; न—नहीं; परम्—वास्तविक दिव्य स्थिति; ते—आपकी; महा-ईश्वर—हे महान् शासक; मृडनाय—सुख के लिए; हि—निस्सन्देह; लोकस्य—सारे जगत के; व्यक्तिः—प्रकट; ते—आपके; अव्यक्त-कर्मणः—जिसके कार्यकलाप सबको अज्ञात हैं।

हे महान् शासक! हमारे लिए आपके असली स्वरूप को समझ पाना असम्भव है। जहाँ तक हम देख पाते हैं, आपकी उपस्थिति हरएक के लिए सुख-समृद्धि लाती है। इसके परे, कोई भी आपके कार्यकलापों को नहीं समझ सकता। हम इतना ही देख सकते हैं, इससे अधिक कुछ भी नहीं।

तात्पर्य : जब देवतागण शिवजी की इस तरह स्तुति कर रहे थे तो उनका आन्तरिक प्रयोजन उन्हें प्रसन्न करना था जिससे वे हलाहल विष से उत्पन्न उपद्रवकारी स्थिति को ठीक कर लें। जैसाकि भगवद्गीता (७.२०) में कहा गया है—*कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः*—जब कोई देवताओं की पूजा करता है, तो यह निश्चित है कि वह इन देवताओं की कृपा से अपनी आन्तरिक इच्छाओं की पूर्ति चाहता है। सामान्यतया लोग किसी न किसी उद्देश्य के लिए देवताओं की पूजा में लिप्त रहते हैं।

श्रीशुक उवाच

तद्वीक्ष्य व्यसनं तासां कृपया भृशपीडितः ।

सर्वभूतसुहृदेव इदमाह सतीं प्रियाम् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; तत्—यह स्थिति; वीक्ष्य—देखकर; व्यसनम्—खतरनाक, भयानक; तासाम्—सारे देवताओं की; कृपया—कृपा के कारण; भृश-पीडितः—अत्यधिक दुखी; सर्व-भूत-सुहृत्—सारे जीवों के मित्र; देवः—महादेव ने; इदम्—यह; आह—कहा; सतीम्—सती देवी से; प्रियाम्—अपनी अत्यन्त प्रिय पत्नी को।

श्रील शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : शिवजी सारे जीवों के प्रति सदैव उपकारी हैं। जब उन्होंने देखा कि सारे जीव विष के सर्वत्र फैलने के कारण अत्यधिक उद्विग्न हैं, तो वे अत्यन्त दयार्द्र हो उठे। अतः उन्होंने अपनी नित्य संगिनी सती से इस प्रकार कहा।

श्रीशिव उवाच

अहो बत भवान्येतत्प्रजानां पश्य वैशसम् ।  
क्षीरोदमथनोद्धृतात्कालकूटादुपस्थितम् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

श्री-शिवः उवाच—श्री शिव ने कहा; अहो बत—कितनी दयनीय है; भवानि—हे प्राणप्यारी भवानी; एतत्—यह स्थिति; प्रजानाम्—सारे जीवों की; पश्य—देखो तो; वैशसम्—अत्यन्त भयानक; क्षीर-उद—क्षीरसागर के; मथन-उद्धृतात्—मन्थन से उत्पन्न; कालकूटात्—विष उत्पन्न होने से; उपस्थितम्—वर्तमान स्थिति।

शिवजी ने कहा : हे प्रिय भवानी! जरा देखो तो किस तरह ये सारे जीव क्षीरसागर के मन्थन से उत्पन्न विष के कारण संकट में पड़ गये हैं!

आसां प्राणपरीप्सूनां विधेयमभयं हि मे ।  
एतावान् हि प्रभोरर्थो यद्दीनपरिपालनम् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

आसाम्—ये सारे जीव; प्राण-परीप्सूनाम्—अपने जीवन की रक्षा के लिए अत्यन्त उत्सुक; विधेयम्—कुछ न कुछ करना चाहिए; अभयम्—सुरक्षा; हि—निस्सन्देह; मे—मेरे द्वारा; एतावान्—इतना; हि—निस्सन्देह; प्रभोः—प्रभु का; अर्थः—कर्तव्य; यत्—जो; दीन-परिपालनम्—पीड़ित मानवता को सुरक्षा प्रदान करना।

जीवन-संघर्ष में लगे समस्त जीवों को सुरक्षा प्रदान करना मेरा कर्तव्य है। निश्चय ही स्वामी का कर्तव्य है कि वह पीड़ित अधीनस्थों की रक्षा करे।

प्राणैः स्वैः प्राणिनः पान्ति साधवः क्षणभङ्गैः ।  
बद्धवैरेषु भूतेषु मोहितेष्व्वात्ममायया ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

प्राणैः—प्राणों से; स्वैः—अपने; प्राणिनः—अन्य जीवों की; पान्ति—रक्षा करते हैं; साधवः—भक्तगण; क्षण-भङ्गैः—नाशवान्; बद्ध-वैरेषु—व्यर्थ ही शत्रुता में लगे; भूतेषु—जीवों में; मोहितेषु—मोहग्रस्त; आत्म-मायया—भगवान् की बहिरंगा शक्ति द्वारा।

भगवान् की माया से मोहग्रस्त सामान्य लोग सदैव एक दूसरे के प्रति शत्रुता में लगे रहते हैं। किन्तु भक्तगण अपने नश्वर शरीरों को भी संकट में डालकर उनकी रक्षा करने का प्रयास करते हैं।

तात्पर्य : यह वैष्णव का लक्षण है। पर-दुःख-दुःखी—बद्धात्माओं को दुखी देखकर वैष्णव सदा दुखी रहता है अन्यथा उन्हें सुखी बनने की शिक्षा देते रहने का उसका कोई अर्थ नहीं होता। भौतिकतावादी जीवन में लोग शत्रुता के कार्यों में अवश्य ही लगे रहते हैं। अतएव ऐसे जीवन की तुलना संसार-दावानल से—जंगल की अग्नि से—की गई है, जो स्वतः लग जाती है। शिवजी तथा परम्परा पद्धति में उनके अनुयायी लोगों को भौतिक जीवन की इस भयावह स्थिति से बचाने का प्रयास

करते हैं। शिवजी के सिद्धान्तों का पालन करने वाले भक्तों तथा रुद्र-सम्प्रदाय वालों का यही कर्तव्य है। वैष्णव सम्प्रदाय चार हैं जिनमें से रुद्र-सम्प्रदाय भी एक है क्योंकि शिवजी (रुद्र) सर्वश्रेष्ठ वैष्णव हैं (वैष्णवानां यथा शम्भुः)। निस्सन्देह, हम देखेंगे कि शिवजी ने मानवता के लाभ हेतु सारा विष पी लिया।

पुंसः कृपयतो भद्रे सर्वात्मा प्रीयते हरिः ।  
प्रीते हरौ भगवति प्रीयेऽहं सचराचरः ।  
तस्मादिदं गरं भुञ्जे प्रजानां स्वस्तिरस्तु मे ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

पुंसः—मनुष्य के साथ; कृपयतः—परोपकार में लगा; भद्रे—हे भद्र भवानी; सर्व-आत्मा—परमात्मा; प्रीयते—प्रसन्न होते हैं; हरिः—भगवान्; प्रीते—अपनी प्रसन्नता के कारण; हरौ—हरि; भगवति—भगवान् में; प्रीये—प्रसन्न होता हूँ; अहम्—मैं; स-चर-अचरः—समस्त चर तथा अचर प्राणियों से; तस्मात्—इसलिए; इदम्—यह; गरम्—विष; भुञ्जे—पीने दो; प्रजानाम्—जीवों का; स्वस्तिः—कल्याण; अस्तु—हो; मे—मेरे द्वारा।

हे मेरी भद्र पत्नी भवानी! जब कोई अन्यो के लिए उपकार के कार्य करता है, तो भगवान् हरि अत्यधिक प्रसन्न होते हैं और जब भगवान् प्रसन्न होते हैं, तो मैं भी अन्य सारे प्राणियों के साथ अत्यधिक प्रसन्न होता हूँ। अतएव मुझे यह विष पीने दो क्योंकि मेरे कारण सारे जीव इस प्रकार सुखी हो सकेंगे।

श्रीशुक उवाच

एवमामन्त्र्य भगवान्भवानीं विश्वभावनः ।  
तद्विषं जग्धुमारेभे प्रभावज्ञान्वमोदत ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; आमन्त्र्य—सम्बोधित करके; भगवान्—शिवजी; भवानीम्—भवानी को; विश्व-भावनः—सारे विश्व के शुभचिन्तक; तत् विषम्—उस विष को; जग्धुम्—पीना; आरेभे—प्रारम्भ किया; प्रभाव-ज्ञा—शिवजी की सामर्थ्य को भलीभाँति जानने वाली माता भवानी ने; अन्वमोदत—अनुमति दी।

श्रील शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : इस प्रकार भवानी को सूचित करके शिवजी वह विष पीने लगे और भवानी ने उन्हें ऐसा करने की अनुमति दे दी क्योंकि वे शिवजी की क्षमताओं को भलीभाँति जानती थीं।

ततः करतलीकृत्य व्यापि हालाहलं विषम् ।  
अभक्षयन्महादेवः कृपया भूतभावनः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; करतली-कृत्य—हाथ में लेकर; व्यापि—विस्तृत; हालाहलम्—हालाहल नामक; विषम्—विष को; अभक्षयत्—पी लिया; महा-देवः—शिवजी ने; कृपया—कृपा करके; भूत-भावनः—सारे जीवों के कल्याण हेतु।

तत्पश्चात् मानवता के लिए शुभ तथा उपकारी कार्य में समर्पित शिवजी ने कृपा करके सारा विष अपनी हथेली में रखा और वे उसे पी गये।

तात्पर्य : यद्यपि विष की मात्रा इतनी अधिक थी कि वह सारे विश्व में फैला था, किन्तु शिवजी में इतनी महान् शक्ति थी कि उन्होंने उसे थोड़ी मात्रा में घटाकर अपनी हथेली में ले लिया। मनुष्य को चाहिए कि शिवजी का अनुकरण न करे। वे जो चाहें सो कर सकते हैं, किन्तु जो लोग गाँजा तथा अन्य नशीली वस्तुओं का धूम्रपान करके शिवजी का अनुकरण करना चाहते हैं, वे ऐसे कार्यों से अवश्य ही मारे जायेंगे।

तस्यापि दर्शयामास स्ववीर्यं जलकल्मषः ।

यच्चकार गले नीलं तच्च साधोर्विभूषणम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

तस्य—शिवजी की; अपि—भी; दर्शयाम् आस—प्रदर्शित किया; स्व-वीर्यम्—अपनी शक्ति; जल-कल्मषः—जल से उत्पन्न वह विष; यत्—जो; चकार—बनाया; गले—गर्दन में; नीलम्—नीली रेखा; तत्—वह; च—भी; साधोः—साधुपुरुष का; विभूषणम्—आभूषण, गहना।

अपयश के कारण क्षीरसागर से उत्पन्न विष ने मानो अपनी शक्ति का परिचय शिवजी के गले में नीली रेखा बनाकर दिया हो। किन्तु अब वही रेखा भगवान् का आभूषण मानी जाती है।

तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः ।

परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

तप्यन्ते—स्वेच्छा से कष्ट उठाते हैं; लोक-तापेन—सामान्य लोगों के कष्ट के कारण; साधवः—साधुपुरुष; प्रायशः—प्रायः, सदैव; जनाः—ऐसे पुरुष; परम-आराधनम्—पूजा की सर्वोच्च विधि; तत्—वह कार्य; हि—निस्सन्देह; पुरुषस्य—परम पुरुष का; अखिल-आत्मनः—जो सबका परमात्मा है।

कहा जाता है कि सामान्य लोगों के कष्टों के कारण महापुरुष सदैव स्वेच्छा से कष्ट भोगना स्वीकार करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में स्थित भगवान् के पूजने की यह सर्वोच्च विधि मानी जाती है।

तात्पर्य : जो लोग अन्यो के कल्याण के लिए कार्य करने में व्यस्त रहते हैं, वे किस प्रकार भगवान् द्वारा तुरन्त मान्य होते हैं, इसकी व्याख्या यहाँ पर दी गई है। भगवद्गीता (१८.६८-६९) में

भगवान् कहते हैं—*य इदं परमं गुह्यं मदभक्तेष्वभिधास्यति... न च तस्मान् मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः*—“जो व्यक्ति मेरे भक्तों को *भगवद्गीता* के सन्देश का उपदेश देता है, वह मुझे अत्यधिक प्रिय है। पूजा द्वारा मुझे तुष्ट करने में उससे बढ़कर कोई नहीं हो सकता।” इस भौतिक जगत में अनेक प्रकार के कल्याणकार्य हैं, किन्तु परम कल्याणकार्य है कृष्णभावनामृत का प्रसार करना। अन्य कल्याणकार्य प्रभावशाली नहीं हो सकते क्योंकि प्रकृति के नियम तथा कर्मफल रोके नहीं जा सकते। भाग्य या कर्म के नियमों के कारण ही मनुष्य सुख या दुख पाता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी को न्यायालय का आदेश मिलता है, तो उसे इसे स्वीकार करना चाहिए, चाहे इससे लाभ हो या हानि। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति कर्म तथा उसके फल के अधीन है। कोई इसे बदल नहीं सकता। इसलिए शास्त्र का वचन है—

*तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो*

*न लभ्यते यद् भ्रमतामुपर्यधः*

( *भागवत १.५.१८* )

मनुष्य को उसके लिए प्रयास करना चाहिए जो कर्मफल के कारण ब्रह्माण्ड में ऊपर नीचे चक्कर लगाने से कभी भी प्राप्त नहीं हो पाता। वह क्या है? मनुष्य को कृष्णभावनाभावित होने का प्रयास करना चाहिए। यदि वह कृष्णभावनामृत को सारे विश्व में प्रसारित करने का प्रयत्न करता है, तो उसे श्रेष्ठतम कल्याणकार्य करने वाला समझना चाहिए। भगवान् स्वतः उससे अत्यधिक प्रसन्न होते हैं। यदि भगवान् उससे प्रसन्न हो जाते हैं, तो फिर उसके लिए प्राप्त करने को बचता ही क्या है? यदि भगवान् ने किसी को मान्यता दे दी है, तो वह भगवान् से भले ही कुछ न माँगे, किन्तु प्रत्येक हृदय में वास करने वाले भगवान् उस की हर आवश्यकता पूरी करते हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में भी हुई है ( *तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्* )। पुनः, जैसाकि यहाँ पर कहा गया है—*तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः। सर्वश्रेष्ठ कल्याणकार्य यही होगा कि लोगों को कृष्णभावनामृत के स्तर तक उठाया जाये क्योंकि बद्धजीव कृष्णभावनामृत के अभाव के कारण ही कष्ट भोग रहे हैं। स्वयं भगवान् भी मानवता के कष्ट को मिटाने के लिए अवतरित होते हैं—*

*यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।*

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

“हे भरतवंशी! जब-जब और जहाँ-जहाँ धर्म की हानि होती है और अधर्म का प्राधान्य होता है उस समय मैं अवतरित होता हूँ। पुण्यात्माओं का उद्धार करने तथा दुष्टों का विनाश करने के अतिरिक्त धर्म की पुनर्स्थापना करने के लिए मैं युग-युग में अवतरित होता हूँ।” भगवद्गीता (४.७-८)। अतएव सारे शास्त्रों का यही अभिमत है कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रसार ही विश्व का सर्वश्रेष्ठ कल्याणकार्य है। इसके फलस्वरूप सामान्य लोगों को जो परम लाभ मिलता है उसके कारण भगवान् भक्त द्वारा की गई सेवा को तुरन्त मान्यता प्रदान करते हैं।

निशम्य कर्म तच्छम्भोर्देवदेवस्य मीढुषः ।

प्रजा दाक्षायणी ब्रह्मा वैकुण्ठश्च शशंसिरे ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

निशम्य—सुनकर; कर्म—कार्य; तत्—वह; शम्भोः—शिवजी का; देव-देवस्य—देवताओं के भी आराध्य; मीढुषः—सामान्य लोगों को बड़े-बड़े वरदान देने वाले; प्रजाः—लोग; दाक्षायणी—दक्षपुत्री भवानी; ब्रह्मा—ब्रह्माजी ने; वैकुण्ठः च—तथा विष्णु ने भी; शशंसिरे—अत्यधिक प्रशंसा की।

इस कार्य को सुनकर भवानी ( दक्षकन्या ), ब्रह्मा, विष्णु समेत सामान्य लोगों ने देवताओं द्वारा पूजित और लोगों को वरदान देने वाले शिवजी के इस कार्य की अत्यधिक प्रशंसा की।

प्रस्कन्नं पिबतः पाणेर्यत्किञ्चिज्जगृहुः स्म तत् ।

वृश्चिकाहिविषौषध्यो दन्दशूकाश्च येऽपरे ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

प्रस्कन्नम्—इधर-उधर फैला हुआ; पिबतः—शिवजी द्वारा पीते समय; पाणेः—हथेली से; यत्—जो; किञ्चित्—थोड़ा सा; जगृहुः—पी लेने का अवसर पाया; स्म—निस्सन्देह; तत्—वह; वृश्चिक—बिच्छू; अहि—सर्प; विष-औषध्यः—विषैली दवाएँ; दन्दशूकाः च—तथा वे जानवर जिनका दंश विषैला होता है; ये—जो; अपरे—अन्य जीव।

जब शिवजी विषपान कर रहे थे उस समय उनके हाथ से जो थोड़ा सा विष गिरकर छितर गया उसे बिच्छू, सर्प, विषैली औषधियाँ तथा अन्य पशु जिनका दंश विषैला होता है पी गए।

तात्पर्य : मच्छर, सियार, कुत्ते तथा अन्य काटने वाले पशु या विभिन्न प्रकार के दन्दशूक जिनका दंश विषैला होता है, समुद्र मन्थन से प्राप्त विष को पी गए क्योंकि वह शिवजी की हथेली से नीचे गिर

गया था।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के आठवें स्कंध के अन्तर्गत “शिवजी द्वारा विषपान और ब्रह्माण्ड की रक्षा” नामक सातवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।